Subject :- Sociology Date :- 24/05/2020
Class :- B.A (H) & XIth Paper :- Ist & Subsidiary (1)
Topic :- समाज तथा इसकी विशेषता/तत्व

By :- Dr. Shivanand Choudhary
Guest Teacher Marwari College, Darbhanga

समाज

Online Study Material No :- (87)

सामान्य बोलचाल में 'समाज' का अर्थ व्यक्तियों के समूह से लगाया जाता है। यदि किसी साधारण व्यक्ति से यह प्रश्न पूछा जाय कि समाज क्या है? तो वह कदाचित यही उत्तर देगा कि बहुत से व्यक्तियों को मिलाकर ही समाज की रचना होती है या समाज व्यक्तियों का समूह है। संभवत: इसलिए जब हम 'भारत युवक समाज', 'हरिजन समाज', 'आर्य समाज' आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं तो हमारा तात्पर्य व्यक्तियों के समूह से होता है, परन्तु समाजशास्त्र में 'समाज' का अर्थ इससे कुछ भिन्न है।

समाजशास्त्र में 'समाज' का अर्थ व्यक्तियों के समूह से नहीं लगाया जाता है बल्कि सम्बन्धों के जाल से लगाया जाता है अर्थात 'समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।' प्रख्यात समाजशास्त्री सर्वश्री MacIver & Page के अनुसार 'समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।'

Reuter ने लिखा है, "समाज एक अमूर्त शब्द है - यह एक समूह के सदस्यों के बीच जो जटिल पारस्परिक सम्बन्ध पाये जाते हैं उनका बोध कराता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि समाज उन मानवीय सामाजिक अन्त: सम्बन्धों का एक सम्पूर्ण क्षेत्र है जो एक समूह के व्यक्तियों के बीच पाया जाता है और उन्हें एक व्यवस्था के अन्तर्गत संगठित, नियंत्रित और स्थिर रखता है।

समाज की विशेषताएँ / तत्व

1. पारस्परिक जागरूकता → समाज का सबसे महत्वपूर्ण तत्व या विशेषता पारस्परिक जागरूकता है। यह हम जानते हैं कि समाज सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर ही पनपता है, परन्तु ये सामाजिक सम्बन्ध पारस्परिक जागरूकता के अभाव में नहीं पनप सकते। उदाहरणार्थ- पिता यह जानता है कि उसका पुत्र कौन है और पुत्र भी इस सम्बन्ध में जागरूक है कि उसका पिता कौन है। वास्तव में दोनों पक्षों में पायी जाने वाली यह पारस्परिक जागरूकता ही सामाजिक सम्बन्धों का आधार है, अत: सामाजिक सम्बन्धों से ही समाज का निर्माण होता है।

2. सहयोग और संघर्ष → सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति अकेले नहीं कर पाता। इसलिए उसे दूसरे व्यक्तियों के

Ajanta Oxford
Scanned with CamScanner

सहयोग की आवश्यकता होती है। साथ ही वह दूसरे व्यक्तियों को भी सहयोग प्रदान करता है। यह सहयोग सामान्यतः दो प्रकार का हो सकता है - (i) प्रत्यक्ष सहयोग, इसमें बहुत से मनुष्य एक उद्देश्य से एक सा कार्य मिल-जुलकर कर सकते हैं जैसे ताश खेलना, फुटबॉल टीम में खेलना आदि। (ii) अप्रत्यक्ष सहयोग, इसमें सहयोग करने वाले व्यक्ति एक ही उद्देश्य रखते हुये अलग-अलग कार्य करते हैं।

3. **समाज जीवन में है →** मनुष्य जो कुछ भी है वह समाज की देन है। उसका स्वरूप समाजीकरण की प्रक्रिया का ही फल है और चूँकि उसे अपने समरूप जीवधारियों में रहना पड़ता है, अतः उन्हीं के बीच उसकी आवश्यकताएँ भी पूरी होती हैं।

4. **समाज में समरूपता है →** समरूपता समाज का महत्वपूर्ण लक्षण है। इसका अस्तित्व समान शरीरों और समान विचारों में ही संभव है, अन्यत्र नहीं। अगर ऐसा न हुआ तो व्यक्ति अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकता। इसके साथ ही अगर व्यक्ति विचारवान न हो तो एक-दूसरे को समझे-बूझे बिना मित्रता, घनिष्ठता और सम्पर्क नहीं हो सकेगा। ये बातें समान शरीर तथा समान विचारों में ही संभव होती हैं। अपनी बुद्धि और साधनों से मानव समाज में समरूपता की खोज कर लेता है।

5. **समाज में विषमरूपता है →** विषमरूपता समरूपता की सहायिका है। समरूपता का अर्थ सभी मनुष्यों के उद्देश्यों में समरूपता है जैसे - प्रजनन, शिशु-रक्षा, भोजन एकत्र करना और शरीर की रक्षा करना आदि। हर एक की मुख्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधन, विधि और माँग अलग-अलग हो सकती है। एक व्यक्ति धन-अर्जन के लिए खेती कर सकता है। दूसरा बढ़ई का कार्य कर सकता है। तीसरा व्यापार कर सकता है। इसी तरह से अन्य लोग अन्य कार्य कर सकते हैं। लेकिन इन सब व्यक्तियों का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन कर पेट भरना ही है, जबकि सबों की विधियाँ भिन्न-भिन्न हैं। अगर ये विधियाँ भिन्न भिन्न न हो तो समाज में अव्यवस्था और अशान्ति फैल जाएगी। फिर अगर सब मनुष्य एक ही तरह का कार्य करने लग जाँय तो उनकी आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं हो सकती। अतएव यह साधनों की विषमरूपता ही उद्देश्यों की समरूपता के लिए पूरक का काम करती है। परन्तु मौलिक उद्देश्यों में विषमरूपता नहीं आनी चाहिए, नहीं तो भयंकर परिणाम हो सकते हैं।

6. **समाज अन्योन्याश्रित है →** जन्म से ही मानव शिशु परावलम्बी हुआ करता है। प्रकृति भी उसे पराश्रित रहने के लिए विवश करती है। इसलिए अन्योन्याश्रितता मानव की स्वाभाविक प्रकृति है। भोजन, आवास और आश्रय की व्यवस्था तो मनुष्य स्वयं कर सकता है परन्तु शारीरिक

Scanned with CamScanner

काम-वासना की तृप्ति हेतु औरत-मर्द एक-दूसरे पर प्रकृति से आश्रित हैं। इसी से परिवार का जन्म होता है और व्यक्ति पारिवारिक आश्रय में आता है। अतः समाज अन्योन्याश्रित है।

7. **समाज में सहकारिता →** समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता, अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य का चयन कर लेता है। इससे कार्य में भी निपुणता आती है। इसी श्रम-विभाजन के आधार पर संसार में सभ्यता और संस्कृति का प्रसार-प्रचार हुआ है। वास्तव में श्रम-विभाजन ही सहकारिता है। सहकारिता का जन्म समाज के साथ ही साथ हुआ है। अतः जैसे-जैसे विश्व उन्नति के शिखर की ओर बढ़ेगा सहकारिता की भावना भी फले-फूलेगी।

8. **समाज में अमूर्तता है →** समाज तो निराकार तथा अमूर्त होता है। समाज मानवों का झुण्ड नहीं बल्कि यह मानव के सम्बन्धों का समूह है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री राइटर का कथन सत्य ही है कि यद्यपि समाज एक वास्तविक वस्तु है परन्तु असल में इसका स्वरूप एक व्यवस्था, एक दशा जैसा है। इसलिए यह अमूर्त है। समाज को स्पर्श या दृश्य इन्द्रियों में परखा नहीं जा सकता, इनको तो अनुभव ही किया जा सकता है।

इस तरह से समाज का अर्थ जीवन-समरूपता, विषमरूपता, सहकारिता, अमूर्तता और अन्योन्याश्रिता से है। जिस समाज का विशेष रूप से किन्ही विशेष कारणों से उल्लेख किया जाता है उसे हम विशिष्ट समाज कहते हैं। उदाहरणस्वरूप महिला-समाज, आर्य समाज, साधु-समाज आदि विशिष्ट समाज इकाई प्रधान होने की वजह से मूर्त होते हैं। जबकि सामान्य समाज अदृश्य और अमूर्त दोनों होता है। इसी सामान्य समाज का अध्ययन समाजशास्त्र में किया जाता है। समाज के कई आधार भी होते हैं-प्रथाएँ या रीतियाँ, पारस्परिक सहयोग, कार्यपद्धति और स्वतंत्रता का अधिकार इत्यादि।

S. N. Choudhary
Marwari College
T. M. B. U